सोमनाथः आस्था संकल्प और पुनर्जागरण की अनंत धारा

न हन्यते हन्यमाने शरीरे अर्थात शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक में निहित भाव और भारतीय सभ्यता की सनातन चेतना का सबसे जीवंत स्वरूप गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र के दक्षिणी तट पर स्थित सोमनाथ मंदिर में दिखाई देता है। बारह ज्योतिर्लिंगों में प्रथम माने जाने वाले सोमनाथ ने इतिहास में अनेक आक्रमणों और विनाश को सहा, लेकिन हर बार फिर खड़ा हुआ और उसकी आरती, घंटियों और श्रद्धा की ध्वनि कभी थमी नहीं।

गजेन्द्र सिंह शेखावत
केंद्रीय संस्कृति एवं पर्यटन मंत्री

प्राचीन काल से प्रभास पाटन महान तीर्थभूमि

भारतीय इतिहास के हजारों वर्षों में सनातन धर्म ने कई तरह की चुनौतियों का सामना किया। राजनीतिक परिवर्तन, आक्रमण और सत्ता परिवर्तन के दौर में मंदिरों, मठों और ज्ञान केंद्रों को नुकसान पहुंचाया गया, उनकी संरचनाएं बदली गईं और उन्हें संरक्षण देने वाली व्यवस्थाएं भी प्रभावित हुईं। इसके बावजूद भारतीय आध्यात्मिक परंपरा न केवल जीवित रही, बल्कि समय के साथ स्वयं को पुनर्स्थापित भी करती रही। इसकी सबसे बड़ी शक्ति यही रही कि संस्थागत क्षति और राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद इसकी आत्मा कभी समाप्त नहीं हुई।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में मंदिर केवल पूजा के स्थल नहीं थे, बल्कि आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के भी केंद्र थे। राजसत्ता से उनके गहरे संबंध के कारण वे युद्ध और संघर्ष के समय सबसे पहले निशाने पर आए। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ पर किया गया आक्रमण इतिहास की सबसे चर्चित घटनाओं में से एक है। फारसी ग्रंथों में इसे विजय के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि भारतीय परंपरा में इसे पीड़ा, संघर्ष और पुनर्निर्माण की कथा के रूप में याद किया गया, लेकिन ऐतिहासिक सत्य यह है कि सोमनाथ कभी श्रद्धा से विलुप्त नहीं हुआ। चालुक्य शासकों सहित अनेक राजाओं ने इसका पुनर्निर्माण कराया और यह निरंतर आस्था का केंद्र बना रहा। ऐसी अनेक घटनाएं भारत के अन्य हिस्सों में भी देखने को मिलती हैं। सोमनाथ का इतिहास केवल एक आक्रमण की कहानी नहीं है। प्राचीन काल से ही प्रभास पाटन एक महान तीर्थभूमि रहा है। इसे विभिन्न ग्रंथों और परंपराओं में प्रभास-पट्टन, शिव-पट्टन और प्रभास-तीर्थ जैसे नामों से जाना गया। यहां तीन पवित्र नदियों का संगम होता है और यही वह स्थान माना जाता है, जहां भगवान श्रीकृष्ण के देहत्याग के बाद उनका अंतिम संस्कार हुआ। निकट ही वैराग्य क्षेत्र और गोपी तालाब स्थित हैं, जहां से गोपी चंदन प्राप्त होता है। इस संपूर्ण क्षेत्र की यात्रा को भारतीय तीर्थ परंपरा में अत्यंत पवित्र माना गया है। काठियावाड़ और गुजरात की प्राचीन धरोहरों पर आधारित कई ऐतिहासिक अभिलेखों और पुरातात्विक रिपोर्टों में भी इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है।

शैव और वैष्णव परंपराओं का केंद्र

सोमनाथ भारत की समावेशी सांस्कृतिक परंपरा का भी प्रतीक है। यह शैव और वैष्णव परंपराओं के अद्भुत संगम का केंद्र है और हमें यह याद दिलाता है कि भारतीय संस्कृति हमेशा से बहुलतावादी और समावेशी रही है। स्वतंत्र भारत में सोमनाथ के पुनर्जागरण का आधुनिक अध्याय 12 नवंबर 1947, दीपावली के दिन आरंभ हुआ, जब देश के प्रथम उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस पवित्र स्थल का दौरा किया। विभाजन की पीड़ा के बीच सरदार पटेल ने सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण का संकल्प लिया। यह केवल एक मंदिर के पुनर्निर्माण का निर्णय नहीं था, बल्कि राष्ट्रीय चेतना को पुनर्जीवित करने का एक ऐतिहासिक प्रयास था। इसके बाद सोमनाथ को एक सांस्कृतिक और बौद्धिक केंद्र के रूप में विकसित करने की दिशा में कार्य प्रारंभ हुआ। 11 मई 1951 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद की उपस्थिति में प्रातः काल संपन्न हुई प्राण-प्रतिष्ठा ने पूरे राष्ट्र की सांस्कृतिक स्मृति और आत्मविश्वास को नई शक्ति प्रदान की।

आधुनिक समाज को सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का प्रयास

आज जब भारत 'भारत @ 2047' की ओर बढ़ रहा है, तब सोमनाथ से जुड़े ये सभ्यतागत मूल्य और भी अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। तकनीकी बदलाव और वैश्विक अनिश्चितताओं के इस दौर में भारत दुनिया को यह संदेश देता है कि विकास का अर्थ करुणा को त्यागना नहीं है और शक्ति का अर्थ संयम को छोड़ देना नहीं है। सोमनाथ हमें सिखाता है कि सच्चा नेतृत्व केवल सामर्थ्य से नहीं, बल्कि स्मृति, विवेक और मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता से निर्मित होता है। इसी दृष्टि से "सोमनाथ स्वाभिमान पर्व 2026-27" की परिकल्पना की गई है। यह वर्षभर चलने वाला राष्ट्रीय आयोजन सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की आध्यात्मिक शक्ति, सांस्कृतिक निरंतरता और सभ्यतागत चेतना को समर्पित है। सदियों तक अनेक बार विध्वंस झेलने के बाद भी जिस प्रकार समाज के सामूहिक संकल्प से सोमनाथ पुनः स्थापित होता रहा, वह भारत की सांस्कृतिक आत्मशक्ति और राष्ट्रीय स्वाभिमान का जीवंत उदाहरण है।

8 से 11 जनवरी 2026 के बीच प्रारंभ हुए इस पर्व के माध्यम से दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पड़ावों को स्मरण किया गया। 1026 में सोमनाथ पर हुए प्रथम दर्ज आक्रमण के एक हजार वर्ष और स्वतंत्रता के बाद 1951 में पुनर्निर्मित मंदिर के पुनः उद्घाटन के 75 वर्ष। इस आयोजन का उद्देश्य सोमनाथ को राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक चेतना और सामूहिक स्मृति के प्रतीक के रूप में स्थापित करना है। 11 मई 2026 को आयोजित होने वाले प्रमुख राष्ट्रीय कार्यक्रम तक देशभर में यात्राएं, सांस्कृतिक आयोजन, संवाद, शैक्षिक कार्यक्रम और विभिन्न ज्योतिर्लिंगों, राज्यों, केंद्र शासित प्रदेशों, जिलों और शिवालयों में समन्वित गतिविधियां आयोजित की जाएंगी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में, जो श्री सोमनाथ ट्रस्ट के अध्यक्ष भी हैं, सोमनाथ ने एक नए पुनर्जागरण का दौर देखा है। प्रशासनिक सुधार, आधारभूत संरचना का विकास, धरोहर संरक्षण और सांस्कृतिक पहलों ने सोमनाथ को एक जीवंत आध्यात्मिक केंद्र के रूप में और अधिक सशक्त किया है। पर्यावरणीय संतुलन और महिला-सशक्तिकरण आधारित सेवा पहलों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि भारतीय सभ्यतागत मूल्य आधुनिक जिम्मेदारियों और समावेशिता के साथ कैसे आगे बढ़ सकते हैं। सोमनाथ स्वाभिमान पर्व आधुनिक समाज को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का एक प्रयास है। यह हमें याद दिलाता है कि सोमनाथ केवल एक मंदिर नहीं है। इसकी वास्तविक शक्ति उन मूल्यों, परंपराओं और जिम्मेदारियों में है, जिन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाया जाता रहा है। इसी कारण आज सोमनाथ केवल पुनर्निर्मित मंदिर नहीं, बल्कि एक जीवंत तीर्थ है। इक्कीसवीं सदी में आगे बढ़ते भारत के लिए सोमनाथ एक महत्वपूर्ण संदेश देता है - कोई भी सभ्यता तब मजबूत रहती है, जब वह अपनी जड़ों से जुड़ी रहे, समय के साथ स्वयं को ढालती रहे और सभी को साथ लेकर चले। सोमनाथ की यह विरासत हमें निरंतर प्रेरित करती रहे- उद्देश्यपूर्ण निर्माण करने के लिए, संतुलित आचरण के लिए और अपनी पहचान के प्रति सजग रहते हुए आगे बढ़ने के लिए।

ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या वट सावित्री अमावस्या कहलाती है। इस दिन सौभाग्यवती महिलाएं अखंड सौभाग्य प्राप्त करने के लिए वट सावित्री व्रत रखकर वटवृक्ष तथा यमदेव की पूजा करती हैं। भारतीय संस्कृति में यह व्रत आदर्श नारीत्व का प्रतीक एवं पर्याय बन चुका है। वट सावित्री व्रत में वट और सावित्री, दोनों का विशेष महत्व है। इस वर्ष यह पर्व 16 मई शनिवार को मनाया जाएगा।

सौभाग्य और पतिव्रता का महापर्व
वट सावित्री व्रत

उत्तर भारत में 'बरगदाही' के नाम से पुकारे जाने वाले सनातन संस्कृति के उत्कृष्ट सनातन जीवन मूल्यों के परिचायक इस व्रत से जुड़ी सावित्री-सत्यवान की पौराणिक कथा से प्रायः हर सनातनधर्मी भली-भांति परिचित हैं। वैदिक युग का वह अद्भुत घटनाक्रम आज भी पढ़ने-सुनने वाले दोनों को अभिभूत कर देता है। ऐसा विलक्षण उदाहरण किसी अन्य धर्म-संस्कृति में मिलना दुर्लभ है। कहते हैं कि महासती सावित्री ने वट वृक्ष के नीचे ही मृत्यु के देवता यमराज से अपने मृत पति का पुनर्जीवन हासिल किया था। तभी से वट वृक्ष हिन्दू धर्म में देववृक्ष के रूप में पूज्य हो गया।

तात्विक दृष्टि से विचार करें तो वट पूजन के इस महाव्रत में स्त्री शक्ति की प्रबल जिजीविषा की विजय के महाभाव के साथ हमारे जीवन में वृक्षों की महत्ता व पर्यावरण संरक्षण का पुनीत संदेश भी छुपा है। कथा के अनुसार सावित्री राजा अश्वपति की पुत्री थी, जिसे राजा ने बहुत कठिन तपस्या करने के उपरांत देवी सावित्री की कृपा से प्राप्त किया था। इसलिए राजा ने उनका नाम 'सावित्री' रखा था। सावित्री बहुत गुणवान और रूपवान थी, लेकिन उसके अनुरूप योग्य वर न मिलने के कारण सावित्री के पिता दुःखी रहा करते थे। इसलिए उन्होंने अपनी कन्या को स्वयं अपना वर तलाश करने भेज दिया और इस तलाश में एक दिन वन में सावित्री ने सत्यवान को देखा और उसके गुणों के कारण मन में ही उसे वर के रूप में वरण कर लिया। सत्यवान साल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र थे, लेकिन उनका राज्य किसी ने छीन लिया था और काल के प्रभाव के कारण सत्यवान के माता- पिता अंधे हो गए थे।

सत्यवान व सावित्री के विवाह से पूर्व ही नारद मुनि ने यह सत्य सावित्री को बता दिया था कि सत्यवान अल्पायु है, अतः वह उससे विवाह न करे। यह जानते हुए भी सावित्री ने सत्यवान से विवाह करने का निश्चय किया और देवर्षि नारद से कहा-भारतीय नारी जीवन में मात्र एक बार पति का वरण करती है, बारंबार नहीं। अतः मैंने एक बार ही सत्यवान का वरण किया है और यदि उसके लिए मुझे मृत्यु से भी लड़ना पड़े तो मैं यह करने को तैयार हूं। उसकी मृत्यु का समय निकट आने पर मृत्यु से तीन दिन पूर्व ही सावित्री ने अन्न-जल का त्याग कर दिया। मृत्यु वाले दिन जंगल में जब सत्यवान लकड़ी काटने के लिए गए तो सावित्री भी उनके साथ गई और जब मृत्यु का समय निकट आ गया तथा सत्यवान के प्राण हरने लिए यमराज आए तो सावित्री भी उनके साथ चलने लगी। यमराज के बहुत समझाने पर भी वह वापस लौटने को तैयार नहीं हुई। तब यमराज ने उससे सत्यवान के जीवन को छोड़कर अन्य कोई भी वर मांगने को कहा।

पं. मनोज कुमार द्विवेदी
ज्योतिषाचार्य, कानपुर

उस स्थिति में सावित्री ने अपने अंधे सास-ससुर की नेत्र ज्योति और ससुर का खोया हुआ राज्य मांग लिया, किंतु वापस लौटना स्वीकार न किया। उसकी अटल पतिभक्ति से प्रसन्न होकर यमराज ने जब पुनः उससे वर मांगने को कहा तो उसने सत्यवान के पुत्रों की मां बनने का बुद्धिमत्तापूर्ण वर मांगा, यमराज के तथास्तु कहते ही मृत्युपाश से मुक्त होकर वटवृक्ष के नीचे पड़ा हुआ सत्यवान का मृत शरीर जीवित हो उठा। तब से अखंड सौभाग्य प्राप्ति के लिए इस व्रत की परंपरा आरंभ हो गई और इस व्रत में वटवृक्ष और यमदेव की पूजा का विधान बन गया। महर्षि श्री अरविंद ने भी इस कथा को मध्य में रखते हुए सावित्री महाकाव्य का रचना की है, जिसमें उन्होंने सावित्री की कथा को आध्यात्मिक जीवन की यात्रा व उसकी अनुभूतियों के रूप में पिरोया है। उसे सावित्री-साधना का आध्यात्मिक ग्रंथ भी कह सकते हैं।

वटवृक्ष के कई दृष्टिकोण : वटवृक्ष कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है, सबसे पहले यह वृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए, तो यह वृक्ष दीर्घायु का प्रतीक है, क्योंकि इसी वृक्ष के नीचे राजकुमार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व को प्राप्त किया और भगवान बुद्ध कहलाए। बोध ज्ञान को प्राप्त करने के कारण इस अक्षय वटवृक्ष को बोधिवृक्ष भी कहते हैं, जो गया तीर्थ में स्थित है। इसी तरह वाराणसी में भी ऐसे वटवृक्ष हैं, जिन्हें अक्षयवट मानकर पूजा जाता है। वटवृक्ष वातावरण को शीतलता व शुद्धता प्रदान करता है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह अत्यंत लाभकारी है।

पीपल के समान वट वृक्ष

शास्त्रों के अनुसार पीपल वृक्ष के समान वट वृक्ष यानी बरगद का वृक्ष भी विशेष महत्व रखता है। पुराणों के अनुसार-वटवृक्ष के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु व अग्रभाग में शिव का वास माना गया है। अतः ऐसा माना जाता है कि इसके नीचे बैठकर पूजन और व्रतकथा आदि सुनने से मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। यह वृक्ष लंबे समय तक अक्षय रहता है, इसलिए इसे अक्षयवट भी कहते हैं। जैन और बौद्ध भी अक्षयवट को अत्यंत पवित्र मानते हैं। जैनों का मानना है कि उनके तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे बैठकर तपस्या की थी। प्रयाग में इस स्थान को ऋषभदेव तपस्थली या तपोवन के नाम से जाना जाता है। हमारी अरण्य संस्कृति में वृक्षों को जीवंत देवताओं की संज्ञा दी गई है।

वैदिक मनीषा कहती है कि हवा के झोंकों से झूमते घने छायादार वृक्ष और उनसे गले मिलती लताएं प्रकृति का श्रृंगार ही नहीं, जीवन का अजस्र स्रोत भी हैं। हमारे देश की समग्र सभ्यता, संस्कृति, धर्म एवं अध्यात्म-दर्शन का विकास वनों में ही हुआ था। वैदिक भारत में लोग वनदेवी की नियमित उपासना किया करते थे। स्मृति ग्रथों में वन संपदा को नष्ट करने वालों के लिए कठोर दंड का विधान किया गया है। ज्ञात हो कि वृक्ष-वनस्पति हमें हरियाली और फल-फूल देने के साथ ही अपनी प्राणवायु से हमें जीवन और अच्छे स्वास्थ्य का वरदान भी देते हैं। इनका न सिर्फ पर्यावरण संरक्षण में अमूल्य योगदान है, वरन ये ग्रह व वास्तुदोष भी दूर करते हैं। हमारे समूचे पर्यावरण की सेहत इन्हीं मूक देववाओं की कृपा पर टिकी है। इसीलिए तो वृक्ष-वनस्पति के प्रति गहरी श्रद्धा व लगाव भारतीय संस्कृति की अति पुरातन व संवेदनशील परंपरा रही है। अतः वट सावित्री व्रत के रूप में वटवृक्ष की पूजा का यह विधान भारतीय संस्कृति की गौरव-गरिमा का एक प्रतीक है और इसके द्वारा वृक्षों के औषधीय महत्व व उनके देवस्वरुप का भी ज्ञान होता है।